शिक्षा के लिए आशा

स्मिता जैन

मोनिका जैन और उनके कुछ दोस्त हर बुधवार को विचार-विमर्श के लिए जमा होते हैं। कुछ मिनट तक उनकी बातचीत का दायरा सामाजिक और पारिवारिक गतिविधियों, हफ्ते भर के उनके 50 घंटे के कामकाज और कॅरिअर की उनकी भावी योजनाओं के इर्दगिर्द कायम रहता है। इसके बाद वे बैठक के अहम मसले पर आते हैं : भारत में शिक्षा से वंचित बच्चों को शिक्षा मुहैया कराने के लिए वे क्या कर सकते हैं? उनमें से एक कहता है, 'मेरे हिसाब से हमें इस मकसद से पैसा जुटाने के लिए एक सामुदायिक सांस्कृतिक समारोह आयोजित करना चाहिए।' दूसरा बिहार में एक शैक्षिक प्रोजेक्ट शुरू करने की बात करता है, जहां ऐसी मदद की जरूरत है। वे इस बारे में देश के गैरसरकारी संगठनों से परियोजना की बाबत मिले प्रस्तावों पर चर्चा करते हैं और कार्रवाई की योजना बनाते हैं।

वैसे तो विचार-विमर्श अपने आप में काफी दमदार दिखता है, पर यह इस तथ्य की रोशनी में ज्यादा महत्वपूर्ण लगने लगता है, जब पता चलता है कि मोनिका जैन और फिलाडेल्फिया के उनके सहयोगी भारत के कहीं आसपास भी नहीं रहते। इनमें से ज्यादातर तो भारतीय भी नहीं हैं और इनमें से किसी ने इससे पहले अगर कभी भारत की यात्रा की है, तो वह भी एक अपवाद ही है। ज्यादातर न तो सुस्थापित पेशेवर हैं और न ही किसी गैरसरकारी संगठन के कर्मचारी। ये मुख्यत: अमेरिकी विश्वविद्यालयों में विशुद्ध रूप से शिक्षा पा रहे छात्र हैं।

यूं तो इनका शैक्षिक सत्र काफी व्यस्त रहता है, पर संस्था *आशा फॉर एजुकेशन* के जरिए हकों से वंचित बच्चों की जिंदगी में तब्दीली लाने की इच्छा ने उन्हें एक साथ ला खड़ा किया है। जैसा कि इस संस्था की वेबसाइट (www.ashanet.org) स्पष्ट करती है कि यह स्थानीय इकाइयों का एक साझा अंतरराष्ट्रीय संगठन है, जो 'शिक्षा के जरिए भारत के वंचित बच्चों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में तब्दीली' लाने को समर्पित है। अमेरिका, कनाडा, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, भारत और सिंगापुर में फैली इसकी 74 इकाइयों ने इस मकसद के लिए 1995 से 2004 के बीच 60 लाख डॉलर से ज्यादा की राशि खर्च की है। भौगोलिक और सामाजिक-सांस्कृतिक भिन्नता की बाधाओं के पार *आशा फॉर एजुकेशन* की ग्लोबल सेना के एक हजार से ज्यादा स्वयंसेवक लाखों भारतीय बच्चों की जिंदगी में उल्लेखनीय सुधार ला रहे हैं। स्वयंसेवकों द्वारा संचालित इस विकेंद्रीकृत और बिना किसी पदानुक्रम वाले संगठन का काम किसी से छिपा नहीं रह गया है। वर्ष 2004 में तीन हजार से अधिक संगठनों के परोपकार के लिए किए गए (धर्मार्थ) कार्यों का हिसाब-किताब रखने वाली एक स्वतंत्र संस्था- चैरिटी नैविगेटर ने अंतरराष्ट्रीय राहत और विकास के क्षेत्र में सालाना 20 लाख डॉलर से कम खर्च करने वाले संगठन आशा फॉर एजुकेशन को शीर्ष दर्जा दिया था। रवि कोंडिकोंडा जैसे स्वयंसेवक और टेक्सस के मेमोरी चिप डिजाइनर एलेन के लिए *आशा* से पहली बार अचानक ही जुड़ना तकरीबन किसी सपने के सच होने जैसा है। कोंडिकोंडा कहते हैं, 'लुइसियाना स्टेट यूनिवर्सिटी में अपने मास्टर्स डिग्री प्रोग्राम के कुछ महीनों के दौरान मुझे भारत और अमेरिका के बीच कायम विराट अंतर को देखकर अहसास हुआ कि आधारभूत शिक्षा का अवसर मिलने का क्या मतलब होता है।' कोंडिकोंडा फिलहाल आशा की डैलस इकाई के समन्वयक हैं और आशा से जुड़ी स्वयंसेवी गतिविधियों में हर हफ्ते 12 घंटे से ज्यादा वक्त बिताते हैं। पिछले साल इस इकाई ने

शिक्षा के व्यापक प्रसार के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर साझा कोशिशों से भारत में तालीम से वंचित बच्चों में नई उम्मीदों का संचार हुआ है।

समकालीन भारतीय फ्यूजन संगीत पर आधारित एक कंसर्ट का बैंड इंडियन ओशन के सहारे आयोजन करके तीन हजार डॉलर से ज्यादा जुटाए थे। वह कहते हैं, 'इस बात से मुझे अपार खुशी मिलती है कि मैं इस संगठन के जरिए कम से कम एक ऐसे बच्चे की जिंदगी में तब्दीली लाने के काबिल हो सका हूं, जो शायद कभी स्कूल नहीं जा पाता।' कोंडिकोंडा की तरह तमाम स्वयंसेवक आशा की अमेरिका स्थित इकाइयों से उसी दौरान जुड़ जाते हैं, जब वे विश्वविद्यालयों में अध्ययन कर रहे होते हैं। असल में, अमेरिका में आशा की आधे से ज्यादा इकाइयों का संचालन वहां के छात्र ही करते हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिल्वैनिया की वरिष्ठ छात्रा और आशा की फिलाडेल्फिया इकाई की जागरूकता समन्वयक मोनिका जैन कहती हैं, 'मेरे विचार से कॉलेज के प्रांगण में, जहां लोग पार्टीबाजी और शराब पर ढेरों पैसा खर्च कर डालते हैं, आशा जैसे कार्यों की शुरुआत एक अच्छा उपाय है, जहां इस तरह के पैसे का कुछ हिस्सा भलाई के कामों में लग सकता है। इसके अलावा, चूंकि इस संगठन में छोटे-बड़े पद का कोई झंझट नहीं है, इसलिए हम पैसा जुटाने के लिए अपनी मर्जी से प्रोजेक्ट चुन सकते हैं और अपनी शंकाओं के बारे में वरिष्ठ लोगों से सीधे संपर्क कर सकते हैं।'

निश्चय ही, आशा की पदानुक्रम-विहीन संरचना के चलते वहां संगठनात्मक वरिष्ठता या कनिष्ठता नहीं होने से परियोजनाओं में विविधता आ सकी है और यह संगठन भारत के बेहद बड़े भूभाग तक पहुंच बनाने में कामयाब हो सका है। भारत के 24 राज्यों में इस संगठन की 385 परियोजनाएं चल रही हैं। हाल में जिन परियोजनाओं को पैसा मुहैया कराया है, उससे इसकी विविधता प्रकट होती है : झारखंड में कैलिफोर्निया स्थित आशा स्टैनफोर्ड ने जागृति विद्यालय को विज्ञान प्रयोगशाला के लिए पैसा दिया है और ग्रामीण क्षेत्रों में पुनर्निर्माण के काम में संलग्न एक गैरसरकारी संगठन को धन दिया है। मध्य प्रदेश में संभावना क्लिनिक (जो भोपाल गैस त्रासदी के पीड़ितों को चिकित्सा सहयोग देने में जुटा है) के साथ मिलकर वॉशिंगटन स्थित आशा सिएटल ने बच्चों की विकलांगता पर आधारित शोध को आर्थिक मदद दी है।

आशा से मिलने वाली आर्थिक मदद अक्सर उन विशिष्ट शैक्षिक कार्यक्रमों

फोटो: अंद्रे ब्रूक एवं एलिया मारिनुकि

महाराष्ट्र में यौनकर्मियों और प्रवासी मजदूरों के बच्चों के लिए वैकल्पिक स्कूल प्रोग्राम अक्षरदीप में पढ़ाई करते बच्चे। इस परियोजना की शुरुआत गैरसरकारी संगठन स्वाधार ने की और इसके लिए धन आशा ज्युरिख ने उपलब्ध कराया।

साभार: आशा फॉर एजुकेशन

आंध्र प्रदेश में टिम्बकटू समूह द्वारा संचालित एक व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र में सिलाई सीखतीं लड़कियां। इसके लिए आशा की ओर से धन मुहैया कराया गया।

की सफलता के लिए बेहद अहम बन जाती है, मुख्यधारा की धन मुहैया कराने वाली एजेंसियां जिनकी अनदेखी कर जाती हैं। कर्नाटक में सरकारी स्कूलों के सशक्तीकरण के कार्यक्रम के समन्वयक राम कृष्णमूर्ति कहते हैं, ''हमारे सरकारी स्कूल गोद लेने के कार्यक्रम के लिए आशा ने जो धन मुहैया कराया, उससे हमें स्कूलों को अतिरिक्त शिक्षक उपलब्ध कराने में मदद मिली। इसकी सख्त जरूरत थी। इन स्कूलों में 250 छात्र भर्ती कर लिए गए थे, जबकि सरकार ने यहां केवल चार शिक्षक नियुक्त किए थे।''

चूंकि आशा से जुड़ना बेहद आसान है, इसलिए लोगों में इसका ज्यादा आकर्षण है। कोई भी स्वयंसेवक अपने नजदीक स्थित आशा की इकाई से जुड़ सकता है, और अगर वहां इसकी कोई इकाई नहीं है, तो किसी मौजूदा इकाई में जाकर एक तय अवधि के बाद उससे संबद्ध इकाई स्थापित कर सकता है। एक स्वयंसेवक बनने के लिए जो अनिवार्यता है, वह है भारत के वंचित बच्चों के लिए कुछ काम करने की इच्छा। यह काम उन गैरसरकारी संगठनों के लिए धन जुटाकर किया जा सकता है, जो बच्चों की दशा सुधारने का काम कर रहे हैं। कोई भी इकाई अपनी मर्जी से परियोजनाओं में पैसा लगाने को स्वतंत्र है, पर इन कार्यक्रमों को धर्मनिरपेक्ष स्वरूप का होना चाहिए और इनका उद्देश्य कोई शैक्षिक मकसद साधना होना चाहिए। प्रत्येक इकाई के स्वयंसेवक लोकतांत्रिक ढंग से हरेक धन वितरण चक्र में अपना प्रस्ताव रख सकते हैं और इनकी उपयोगिता की समीक्षा मुख्य आशा डैटाबेस के जरिए हो सकती है। पैसा दिए जाने से पहले स्वयंसेवक इस डैटाबेस की पड़ताल करते हैं।

भारत से बाहर स्थित आशा की इकाइयों में कार्यरत स्वयंसेवक हजारों मील दूर से परियोजनाओं की निगरानी कर पाने में सक्षम नहीं होते। ऐसी स्थिति में भारतीय स्वयंसेवकों का आशा का बेहद व्यापक आधार मददगार साबित होता है। आशा की बेंगलूर इकाई के समन्वयक शरद जायसवाल बताते हैं, 'दुनिया के विभिन्न हिस्सों में स्थित आशा की इकाइयां अक्सर हमारे इर्दगिर्द चल रही परियोजनाओं से जुड़ी सूचनाएं हासिल करने के लिए हमारे स्वयंसेवकों से संपर्क करती हैं। परियोजना स्थल पर उन्हें ले जाने, परियोजनाओं की निगरानी और उसी जगह पर अपनी रिपोर्ट दाखिल कराने में हम उनकी मदद करते हैं।'

वॉशिंगटन, डी.सी. स्थित आशा की इकाई में कार्यरत पैसा जुटाने वाले समन्वयक जेम्स मिंटर कहते हैं, 'एक बात है, जो मुझे आशा के प्रति आकर्षित करती है। वह है इसकी विकेंद्रीकृत संरचना, जिससे जुटाए गए कोष में सौ फीसदी पारदर्शिता रहती है, भारत में खर्च हुए पैसे का पूरी क्षमता से उपयोग होता है और अनिवार्य लेखा परीक्षण के चलते परियोजनाओं पर पूरी नजर रहती है।'

यद्यपि आशा का मुख्य काम भारत में चलाई जा रही उसकी शिक्षा संबंधी परियोजनाओं के लिए धन जुटाना है, तो भी उसके स्वयंसेवक अपने-अपने देशों में इतने ही महत्वपूर्ण दूसरे मुद्दों पर जागरूकता फैलाते हैं। मिंटर कहते हैं, 'भारत में वंचित बच्चों की मदद करने की मेरी ख्वाहिश पूरी करने के लिहाज से आशा मेरे लिए एक उपयोगी जरिया रही है। साथ ही, इसने भारत जैसे विकासशील देशों से जुड़े सामाजिक मुद्दों पर मेरी जानकारी में अत्यधिक इजाफा किया है।' मिंटर हर साल चार महीने उन परियोजना-स्थलों पर बिताते हैं, जिनके लिए खुद उन्होंने धन जुटाया है। वह आशा की दूसरी इकाइयों में भी जाते हैं। अभी हाल में ही उन्होंने उत्तरांचल, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल का दौरा करके वहां के निवासियों की सामाजिक-आर्थिक दशाओं को देखा है। जागरूकता और धन जुटाने की अपनी इकाइयों की जिन भावी गतिविधियों को लेकर वह खासे उत्साहित हैं, वे हैं : भारतीय डाक्युमेंट्री फिल्म महोत्सव, मैराथन और एक कंसर्ट का आयोजन। वह कहते हैं, 'चूंकि मेरा परिवार इस अवैतनिक काम के खिलाफ है और इसमें मेरे व्यक्तिगत संसाधन लग रहे हैं, इसलिए स्वयंसेवक के रूप में मेरे काम पर खतरा मंडरा रहा है। पर मेरे काम का सबसे बड़ा पुरस्कार परियोजना स्थलों पर जाना और वहां बच्चों के रोशन चेहरे देखना है। स्वयंसेवक होकर आप कोई व्यक्तिगत उपलब्धि हासिल नहीं करते, पर इससे कुछ ऐसा तो मिलता है, जो हमारी अंतरात्मा को तृप्त करता है।'

***स्मिता जैन** स्वतंत्र अमेरिकी लेखिका हैं और नई दिल्ली में रहती हैं।*